ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 170-172
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

मुर्दहिया : एक दृष्टि

कृष्णकान्त चन्द्रा
एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी, (उ0प्र0) भारत

Received- 08.05.2019, Revised- 12.05.2019, Accepted - 15.05.2019 E-mail: -dr.kkchandra@gmail.com

सारांश : ***मुर्दहिया प्रोफेसर तुलसीराम की आत्मकथा है, जिसका प्रकाशन 2010 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है। यह सिर्फ आत्मकथा ही नहीं है, बल्कि उसके साथ जुड़े हुए समाज का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, ऐतिहासिक चित्रण भी है। इस आत्मकथा को सात भागों में बाँट कर लिखा गया है – भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि, मुर्दहिया तथा स्कूली जीवन, अकाल में अंधविष्वास, मुर्दहिया के गीत तथा लोकजीवन, भुतनिया नागिन, चले बुद्ध की राह, आजमगढ़ में फाकाकसी। इस आत्मकथा की भूमिका लिखते हुए तुलसीराम कहते हैं कि मुर्दहिया हमारे गाँव धरमपुर, आजमगढ़ की बहुउद्ददेशीय कर्मस्थली थी। चरवाही से लेकर हरवाही तक के सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे। इतना ही नहीं स्कूल हो या दुकान बाजार हो या मंदिर, यहाँ तक की मजदूरी के लिए कोलकाता वाली रेल गाड़ी पकड़ना हो तो मुर्दहिया से ही गुजरना पड़ता था।***

कुंजीभूत शब्द– :–आत्मकथा, प्रकाशन, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, ऐतिहासिक ।

हमारे गाँव की जियोपोलिटिक्स यानी राजनीति में दलितों के लिए मुर्दहिया एक सामरिक केंद्र जैसी थी। जीवन से लेकर मरण तक की सारी गतिविधियाँ मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे रोचक तथ्य यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नहीं करती थी और दोनों की मुक्तिदाता थी। विशेष रूप से मरे हुए पशुओं के मांस पिंड पर जूझते सैकड़ों गिद्धों के साथ कुत्ते और सियार मुर्दहिया को एक कला स्थली के रूप में बदल देते थे। रात के समय इन्हीं सियारों की हुआ–हुआ वाली आवाज उसकी निर्जनता को भंग कर देती थी। हमारे दलित बस्ती के अनगिनत दलित हजारों दुःख–दर्द अपने अंदर लिए मुर्दहिया में दफन हो गए थे। यदि उनमें से किसी की भी आत्मकथा लिखी जाती, उसका शीर्षक मुर्दहिया ही होता। मुर्दहिया सही मायने में हमारी दलित बस्ती की जिंदगी थी। जमाना चाहे जो भी हो मेरे जैसा कोई अदना सा व्यक्ति जब भी पैदा होता है, वह अपने इर्द–गिर्द जूझते लोकजीवन का हिस्सा बन ही जाता है। यही कारण था कि लोकजीवन हमेशा मेरा पीछा करता रहा। परिणामस्वरूप मेरे घर से भागने के बाद जब मुर्दहिया प्रथम खंड समाप्त हो जाता है तो हर किसी के मुख से निकलने वाले पहले शब्द से तुकबंदी बना कर गाने वाले जोगी बाबा लक्कड़ ध्वनि पर नृत्य कला बिखेरती नटिनिया, गिद्ध प्रेमी पग्गल बाबा तथा सिंघा बजाता बंकिया डोम जैसे जिंदा लोक पात्र हमेशा के लिए गायब होकर मुझे बड़ा दुःख पहुँचाते हैं।[1]

तुलसीराम की आत्मकथा इससे पूर्ववर्ती दलित आत्मकथाओं से इस बात में भिन्न है कि यह सिर्फ दलित जीवन और समाज तक ही सीमित न होकर उसके प्रतिपक्ष के सामाजिक वर्गों सामाजिक अवस्था और मानसिकता का पूरा विश्लेषण है। जैसे इसमें शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक वर्चस्व को बनाए रखने के लिए दलितों को शिक्षा के प्रति हतोत्साहित करना। जब तुलसीराम चिंतामणि सिंह को परीक्षा की तैयारी कराने के लिए उनके पास जाते हैं तो वहाँ उनकी मुलाकात हीरालाल से होती है। यह वही हीरालाल है जो बार–बार उनको गालियाँ दिया करता था। हीरालाल ने देखते ही कहा – का रे चमरा तो यहाँ आ गइले। हीरालाल मेरे ऊपर शेर की तरह झपट पड़े और जब तक चिंतामणि सिंह उन्हें पकड़ते तब तक वे मुझे चार चाटे लगा चुके थे। चिंतामणि के निवास से जाने से पहले उन्होंने मुझे यह कह कर धमकाया कि – देखत हई तू कैसे इम्तिहान देला।[2]

इसी तरह एक घटना का जिक्र रूपराम ने सुनाया कि पिछले साल यानी 1963 की परीक्षा के दौरान उनकी बस्ती में रह रहे चार परीक्षार्थियों पर रास्ते में ही उन्हीं के स्कूल के सवर्ण छात्रों ने हाकी से हमला करके बुरी तरह घायल कर दिया था।[3] ब्राह्मण समाज की अंदरूनी क्षुद्रता और उसका महिमामंडित जो स्वरूप है वह पूरे ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र प्रस्तुत करता है। आर्थिक वैषम्य की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि जो संपन्न हैं उन्होंने शोषण का नया तरीका निकाल रखा है कि अनाज जब देते थे तो कम तोलते थे, जब लेते थे तो अधिक तोलते थे, क्योंकि बटखरे में अंतर होता था। एक सेर का बटखारा एक टूटा हुआ पत्थर का टुकड़ा होता था

जो सरकारी सेर से बहुत छोटा होता था। हमारे गाँव के ब्राह्मण तो ईंट तोड़कर अपना सेर चलाते थे जो असली सेर से लगभग एक चौथाई कम होता था। वे बनि (दिन भर काम के बदले एक सेर अनाज की मजदूरी) इसी ईंट से तौल कर वह भी सबसे खराब अनाज दलितों को देते थे, किंतु बेगही वापस असली सेर से तौलते थे। अतः बेगही तथा कम तौली हुई बनि का मिलना भी दूभर हो जाता था।[4]

डेढ़िया बेगही का चक्रविधि भुगतान और ईंट वाली तौल से चुकाई जाने वाली बनि आदि को लेकर दलितों तथा ब्राह्मणों के बीच अक्सर तनातनी हो जाती थी। प्रायः हर साल दलित कुछ दिनों के लिए हड़ताल कर देते थे। परिणामस्वरूप ब्राह्मणों के मनाने पर पुनः काम शुरू होता था। कुछ दिनों तक असली सेर से तौल कर बनि देते थे किंतु बाद में फिर वही ईट वाला सेर हावी हो जाता था। तुलसीराम दलितों की आर्थिक स्थिति को दर्शाते हुए लिखते हैं "मेरे परदादा गाँव के ब्राह्मण जमीदारों के खेत पर बंधुआ मजदूर थे, उन जमींदारों ने ही कुछ खेत उन्हें दे दिया था। गाँव के अन्य दलित भी उन्हीं जमीदारों के यहाँ हरवाही (हल चलाने का काम) करते थे। यह हरवाह पुष्त दर पुष्त चली आ रही थी।"[5] यहाँ भी दलितों को मरे पशुओं का मांस खाने के लिए बाध्य होना पड़ता था। इस सदंर्भ में वे लिखते हैं "आजादी के पूर्व हमारे क्षेत्र के सभी चमार गाय, बैल तथा भैंस मर जाने पर उनका मांस खाते थे। मेरी बुढ़िया दादी अक्सर मुझे सोते समय अपनी युवावस्था के अनेक संस्मरण सुनाया करती थी, जो अत्यंत रोचक एवं चमत्कारक हुआ करते थे। दादी के ये संस्मरण उनकी षतकीय उम्र को देखते हुए संभवतः सन् 1860 या 70 के दशक के मालूम पड़ते हैं। ..... दादी भी इस होड़ में शामिल हुआ करती थी। दादी मांस के कुछ हिस्से को आवश्यकतानुसार पकाती, किंतु अधिकांश बचे हुए कच्चे मांस को कई दिनों तक तेज धूप में में सुखाती। खूब सूख जाने पर मांस को कच्ची मिट्टी से बनी कोठिली में रखकर बंद कर देती। इस प्रक्रिया से सूखे मांस का भंडारण बढ़ता जाता और साल के उन महीनों में जब खाने की वस्तुओं का टोटा पड़ जाता तो सूखे मांस को नए तरीके से पकाकर परिवार के लोग अपना भेट भरते।"[6] इसी तरह मुर्दहिया में लोक जीवन का चित्रण भी देखने को मिलता है क्योंकि मुर्दहिया आत्मकथा लोक जीवन के चित्रण से भरी हुई है। इसमें खेतीवाड़ी, तालाब, पेड़–पौधे का चित्र, मेलों का वर्णन, पूजा–पाठ, जादू–टोना, भूत–भूतनियों, बाबाओं आदि का चित्रण भरा पड़ा है जिसमें लोक कलाकारों तथा एक बाबा को किस प्रकार मार दिया गया का सविस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। जैसे घर से चलते समय तुलसीराम की बुढ़िया दादी ने कहा था कि बबुरा धनुहुवा पहुँचते ही किसी पोखरा या पोखरी ढूंढ कर मैं नहाकर गाँव की देवी चमरिया माई की विनती करते हुए उन्हें धार पुजौरा चढ़ाने की मनौती मानो ताकि इम्तिहान में पास हो जाऊ।

राजेंद्र यादव कहते हैं कि डेढ़ दर्जन आत्मकथाएँ पहले से ही हैं लेकिन ये उनसे इस अर्थ में अलग है कि ज्यादातर आत्मकथाओं में दलित या मार्जिन के लोग हैं। जिनके आत्मकथाओ में रोना–धोना होता है कि मालिकों ने हमारे ऊपर अत्याचार किए, गालियाँ दिया आदि। लेकिन यह पहली आत्मकथा है जो कोई शिकायत नहीं करती है। इसमें सारे अंधविश्वास गाँव के जिसमें भूत–प्रेत, गंदगी, झाड़–फूंक, जादू–टोना करने वाले गरीब तबके में जो गाँव में होती है, वहाँ मेले–वेले भी आते हैं, डांस का भी प्रोग्राम होता है, वहाँ राजनीति भी होती है, साधु बाबा भी चले आते हैं, करपात्री जी भी चले आते हैं और दूसरे लोग आते हैं, राजनीतिक चेतना आती है। इसी चेतना के कारण तुलसीराम मार्क्सवाद से प्रभावित होने की कहानी बताते हैं जिसमें हाशिए और बाली का चित्रण करते हैं। यह सारी चीजें धीरे–धीरे कैसे उस व्यक्ति के माध्यम से उस पूरे समाज को जगा रही थी इसका पूरा दस्तावेज मुर्दहिया है। मुर्दहिया में एक अजीब किस्म की सहनशीलता है अत्याचार होते हैं घटनाएँ घटती हैं दुख होता है लेकिन पात्र है जो कभी शिकायत नहीं करता वह सिर्फ संघर्ष करता है। वह संघर्ष का आत्मविश्वास है उसे गाँधी का असहयोग आंदोलन का आत्मविश्वास की याद दिलाता है। जहाँ रेसिज्म करने से या बकायदा युद्ध बना देने से चीजें वही तक सिमट जाएंगी, आगे नहीं बढ़ेगी। पहली बार जब वह रेल देखता है, पहली बार जब वह शहर देखता है, पहली बार जब गाँव में फिल्म चलाते हैं। इन सब चीजों को देखते हुए मुझे मुर्दहिया एक विशेष किस्म का उपन्यास लगता है, इसमें खास तरह की तटस्थता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह आत्मकथा आजमगढ़ का इतिहास बताते हुए हिन्दी साहित्यकार ष्याम नारायण पाण्डेय का वर्णन भी करती है साथ ही तरवां गाँव में नेता अमर सिंह से मुलाकात का भी जीक्र करते हुए पुलिस थाने में किस प्रकार क्रान्तिकारियों को मार डालते थे इसका भी वर्णन मिलता है। अपने प्रति और स्थितियों के प्रति जो उसे दूसरी आत्मकथाओं से अधिक महत्वपूर्ण बना देता है। मुझे सचमुच इसने इतना आकर्षित किया कि मैंने एक एडिटोरिअल का एक हिस्सा लिखा था। मैं समझता हूँ कि ये जो चीजें हैं इस अर्थ में हमें मुर्दहिया को देखना चाहिए और सिर्फ मुर्दहिया को भी नहीं देखना चाहिए जो हंसी का साहित्य है

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

और उसकी आवाज को समझने की कोशिश करनी चाहिए। उनके मूल चेतना को, उन लोगों की मानसिकता को अगर समझ लेंगे नहीं तो उनके बारे में कुछ कर नहीं पाएंगे। हम कर तभी पाएंगे जब उस वर्ग के तकलीफों को समझेंगे। मैं समझता हूँ कि यहाँ से एक नई शुरुआत होती है। मुर्दहिया एक तरह की संघर्ष की शुरुआत करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुर्दहिया : तुलसीराम, भूमिका से पृष्ठ संख्या 5
2. मुर्दहिया : तुलसीराम, पृष्ठ संख्या 156
3. मुर्दहिया : तुलसीराम पृष्ठ संख्या 155
4. मुर्दहिया : तुलसीराम पृष्ठ संख्या 63
5. मुर्दहिया : तुलसीराम पृष्ठ संख्या 14
6. मुर्दहिया : तुलसीराम पृष्ठ संख्या 15

*****